हरिशंकर परसाई से समकालीन व्यंग्य में ‘आम आदमी’ की छवि का विकास

नीति शर्मा[1], डॉ. मंजू शर्मा[2]

[1]शोधार्थी, हिंदी विभाग, करियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, कोटा, राजस्थान

[2]शोध पर्यवेक्षक, सह-आचार्य, हिंदी विभाग, करियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, कोटा, राजस्थान

सारांश—**यह शोध-पत्र हिन्दी व्यंग्य में ‘आम आदमी’ की छवि को परसाई से लेकर समकालीन व्यंग्य तक समझने का एक प्रयास है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि व्यंग्य में आम आदमी केवल हँसी का विषय नहीं होता। वह समाज की वास्तविक स्थिति को सामने रखने वाला पात्र है। परसाई के व्यंग्य में आम आदमी सजग, सोचने वाला और व्यवस्था से टकराने वाला दिखाई देता है। समय के साथ उसकी स्थिति और अधिक उलझती चली जाती है। वह दबाव, डर और असुरक्षा के बीच जीता हुआ नजर आता है। समकालीन व्यंग्य में आम आदमी उपभोक्तावादी जीवन और बाजार के प्रभाव में फँसा हुआ दिखता है। सत्ता, राजनीति और सामाजिक ढांचे का असर उसकी सोच और जीवन पर साफ दिखाई देता है। यह शोध-पत्र बताता है कि व्यंग्य बदलते समाज को समझने का एक प्रभावी माध्यम है। इस तरह हिन्दी व्यंग्य में आम आदमी की छवि हमारे समाज की बदलती सच्चाइयों को सामने लाती है।**

मुख्य शब्द—**हिन्दी व्यंग्य, आम आदमी, हरिशंकर परसाई, समकालीन, सामाजिक यथार्थ, लोकतांत्रिक सोच, सामाजिक संरचना, सामाजिक चेतना, सामाजिक अनुभव, मानवीय संवेदना**

I. प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य एक ऐसी विधा है जो समाज की छिपी हुई सच्चाइयों को सरल ढंग से सामने रखती है। यह विधा जीवन के रोज़मर्रा के अनुभवों से जुड़कर मनुष्य की सोच और उसके व्यवहार को समझने में मदद करती है। व्यंग्य की भाषा सहज होती है, इसलिए वह पाठक के मन तक जल्दी पहुँच जाती है (अनुपमा तिवारी, 2021)। इसमें लेखक समाज को बाहर से समझने की बजाय भीतर से देखने की कोशिश करता है। व्यंग्य मनुष्य की कमजोरियों और उस पर पड़ने वाले हालातों के दबाव को उजागर करता है। इसी क्रम में समाज की बनावट और उसके भीतर मौजूद टकराव साफ़ दिखाई देने लगते हैं। समय के साथ हिन्दी व्यंग्य ने अपनी अलग पहचान बनाई और उसे और मज़बूत किया है। इसी पहचान के भीतर आगे चलकर ‘आम आदमी’ का स्वर उभरता है, जो धीरे-धीरे व्यंग्य का मुख्य केंद्र बन जाता है (सुभाष चंदर, 2017)।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए हिन्दी व्यंग्य में आम आदमी की मौजूदगी को इस शोध-पत्र का मुख्य आधार बनाया गया है। आम आदमी वही है जो समाज की व्यवस्था के भीतर रहते हुए रोज़मर्रा की परेशानियों से जूझता रहता है (श्यामसुंदर घोष, 1958)। उसकी स्थिति, उसकी सीमाएँ और उसकी प्रतिक्रियाएँ व्यंग्य को सामाजिक अर्थ देती हैं। व्यंग्य के माध्यम से यह समझने की कोशिश की जाती है कि सामान्य व्यक्ति को समाज में किस रूप में देखा और समझा गया है। समय के साथ उसके रूप और भूमिका में जो बदलाव आए हैं, वे भी महत्त्वपूर्ण हैं। यही बदलाव व्यंग्य को लगातार आगे बढ़ाते रहते हैं। इस शोध-पत्र का उद्देश्य इसी प्रक्रिया को क्रम से समझना है। इसी संदर्भ में आगे व्यंग्य साहित्य के अर्थ, उसके स्वरूप और उसकी सामाजिक भूमिका पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

II. साहित्य समीक्षा

साहित्य समीक्षा का मुख्य उद्देश्य हिन्दी व्यंग्य में ‘आम आदमी’ की छवि पर किए गए पूर्ववर्ती अध्ययनों का विवेचन और विश्लेषण करना है। इसके माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि विभिन्न विद्वानों और आलोचकों ने परसाई से लेकर समकालीन व्यंग्य तक आम आदमी की सामाजिक स्थिति, उसकी समस्याओं और उसकी मानसिकता को किस रूप में देखा है। समीक्षा से यह भी स्पष्ट होता है कि बदलते समय, सामाजिक ढाँचे और सत्ता के स्वरूप ने आम आदमी की भूमिका को किस प्रकार प्रभावित किया है। चयनित पुस्तकों और लेखों की समीक्षा इस शोध को वैचारिक आधार प्रदान करती है —

- “स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य साहित्य और व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल” डॉ. कमलेश कुमार पटेल (2024) द्वारा लिखित किताब —

यह किताब आज़ादी के बाद के हिंदी व्यंग्य को समाज और राजनीति के संदर्भ में समझने की कोशिश करती है और इसमें श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य लेखन पर खास ध्यान दिया गया है। पुस्तक बताती है कि स्वतंत्रता के बाद का आम आदमी नई सत्ता, प्रशासन और गाँव-शहर की व्यवस्था के बीच कैसे उलझ गया। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य पात्रों के माध्यम से आम आदमी की रोज़मर्रा की परेशानियाँ, समझौते और चुप रहने की आदत सामने आती है। यहाँ आम आदमी व्यवस्था का शिकार होने के साथ-साथ उसी व्यवस्था का हिस्सा भी बनता हुआ नज़र आता है। वह सत्ता से दूर रहकर जीने की बजाय उसके भीतर रहते हुए जीवन जीता है। यह दृष्टि आम आदमी की उस छवि को सामने लाती है जो परसाई की तीखी समझ से आगे बढ़कर पूरे समाज के अनुभव को दिखाती है। इस तरह यह पुस्तक हिंदी व्यंग्य में आम आदमी की छवि के धीरे-धीरे हुए विकास को समझने में महत्वपूर्ण मानी जा सकती है।

- “व्यंग्य के नव स्वर” स. एम. एम. चन्द्र (2023) द्वारा लिखित पुस्तक —

यह किताब समकालीन हिन्दी व्यंग्य में सामने आ रहे नए रचनात्मक और वैचारिक रूपों को समझने की कोशिश करती है। इसमें बताया गया है कि समय के बदलाव के साथ व्यंग्य की भाषा और सोच कैसे बदल गई है। पुस्तक आज के आम आदमी को उसके सामाजिक अनुभवों, डर, असुरक्षा और नैतिक उलझनों के संदर्भ में देखती है। लेखक बताते हैं कि अब आम आदमी सच को समझने वाला संवेदनशील इंसान बन गया है। उसके जीवन में बाजार, मीडिया और सत्ता की दखल ने व्यंग्य को नए विषय और नया रूप दिया है। आज का आम आदमी बोलने के बजाय चुप रहकर अपना अस्तित्व बचाने की कोशिश करता दिखाई देता है। यह चुप्पी व्यंग्य में एक नई बेचैनी और गहरे तनाव को सामने लाती है, इसलिए यह कृति आम आदमी की बदलती छवि को समझने में उपयोगी मानी जा सकती है।

- "हिंदी साहित्य में व्यंग्य का स्वरूप और विविध आयाम" अनुपमा तिवारी (2021) द्वारा लिखित पुस्तक —

यह किताब हिंदी व्यंग्य की परंपरा, उसकी भाषा और उसके सामाजिक सरोकारों को सरल रूप में समझने का प्रयास करती है। इसमें व्यंग्य को केवल हँसी तक सीमित न मानकर उसे समाज और इंसान के अनुभवों से जोड़कर देखा गया है। लेखिका के अनुसार,

"व्यंग्य तभी सार्थक होता है
जब वह सामान्य व्यक्ति के जीवन से निकलकर समाज की सच्चाई को सामने रखे।"
[अनुपमा तिवारी (2021), पृ. 143]

इसी सोच के तहत आम आदमी को व्यंग्य का मुख्य आधार माना गया है। पुस्तक यह दिखाती है कि आम आदमी की छोटी-छोटी समस्याएँ व्यंग्य को गहराई देती हैं। उसका डर, उसकी चुप्पी और उसकी सीमित इच्छाएँ व्यंग्य को जीवन के बहुत करीब ले आती हैं। इसलिए यह कृति हिंदी व्यंग्य में आम आदमी की छवि को समझने के लिए एक मजबूत वैचारिक आधार देती है।

- "हिंदी का आधुनिक हास्य व्यंग्य साहित्य" डॉ० सुजाता वर्मा (2020) द्वारा लिखित पुस्तक —

यह किताब आधुनिक हिंदी व्यंग्य को समाज और बदलती जीवन स्थितियों से जोड़कर समझने की कोशिश करती है। पुस्तक बताती है कि आज के समय में व्यंग्य केवल हँसाने का साधन न रहकर आम आदमी के जीवन संघर्षों को दिखाने का माध्यम बन गया है। लेखिका आधुनिक व्यंग्यकारों के उदाहरण देकर बताती हैं कि आम आदमी नौकरी, महँगाई और सामाजिक दबावों के बीच कैसे तालमेल बिठाने की कोशिश करता है। उसके जीवन में डर और असुरक्षा धीरे-धीरे स्थायी हो जाते हैं। यह स्थिति व्यंग्य को हल्केपन से निकालकर गंभीर सामाजिक टिप्पणी बना देती है। इस तरह आधुनिक व्यंग्य आम आदमी की वास्तविक हालत को समझने का साधन बनता है। इसलिए यह कृति हिंदी व्यंग्य में आम आदमी की छवि के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ मानी जा सकती है।

- "व्यंग्य : शब्दार्थ एवं व्युत्पत्ति

व्यंग्य शब्द का मूल अर्थ भारतीय काव्य परंपरा में "व्यंजना" से जुड़ा माना गया है। संस्कृत काव्यशास्त्र में व्यंग्य को ध्वनि-तत्त्व के अंतर्गत समझा गया है, जहाँ शब्द अपने सीधे अर्थ से आगे बढ़कर छिपे हुए भाव को प्रकट करता है (श्यामसुंदर घोष, 1958)। "आचार्य आनंदवर्धन" के अनुसार, जिस काव्य में सीधे अर्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक प्रभावी हो, वही ध्वनि काव्य कहलाता है। उनके अनुसार—

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो ।
व्यक्त. काव्यविशेष स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः"
(ध्वन्यालोक — १/१३)

इस कथन से स्पष्ट होता है कि व्यंग्य का आधार केवल शब्द न होकर उससे निकलने वाला छिपा अर्थ होता है। इसी अर्थ-संकेत की परंपरा से व्यंग्य का साहित्यिक रूप विकसित हुआ है। भारतीय काव्यशास्त्र में व्यंजना-शक्ति को अर्थ-विस्तार का मुख्य आधार माना गया है (शिवजी नारायण दीक्षित, 1975)।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से "व्यंग्य" शब्द संस्कृत की "व्यञ्ज्" धातु से बना माना गया है, जिसका अर्थ विशेष रूप से प्रकट करना या संकेत देना है। 'नालन्दा विशाल शब्द सागर' और 'हिंदी लघु शब्द सागर' — दोनों में व्यंग्य का अर्थ उस छिपे भाव से जोड़ा गया है, जो शब्द की व्यंजना से सामने आता है (इतू सिंह, 2014)। इस तरह व्यंग्य का संबंध केवल शब्द या सीधे कथन से नहीं होता। इसका संबंध उस संकेतात्मक अर्थ से होता है, जो पाठक को सोचने के लिए प्रेरित करता है। 'डॉ. बलदेव शेखर तिवारी' ने ध्वनि और वक्रोक्ति के संदर्भ में व्यंग्य को अर्थ को आगे बढ़ाने वाली शक्ति माना है। इस संदर्भ में वह कहते भी है कि —

"ध्वनि और वक्रोक्ति — जैसे शब्दों के मिलते-जुलते अर्थ के विराट संवाहक के रूप मे
व्यंग्य की परिकल्पना करते है।"
(डॉ. बलदेव शेखर तिवारी, (2016), पृ. 47)

समय के साथ यही व्यंजना साहित्य में व्यंग्य की पहचान बन गई। इस विकास को समझने से व्यंग्य का वैचारिक आधार स्पष्ट होता है। इसी क्रम में व्यंग्य की व्युत्पत्ति को अर्थ-संकेत की परंपरा से जोड़कर देखा गया है (सुभाष चंदर, 2017)।

III. हिन्दी व्यंग्य में 'आम आदमी' की अवधारणा

हिन्दी व्यंग्य में 'आम आदमी' की अवधारणा समाज के भीतर से जन्म लेती हुई दिखाई देती है। यह ऐसा व्यक्ति है जो किसी विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधि न होकर रोज़मर्रा के संघर्षों के बीच जीवन जीता है। उसकी दुनिया छोटे अनुभवों, सीमित साधनों और लगातार बने रहने वाले दबावों से बनी होती है। व्यंग्य इन अनुभवों को सीधे बयान करने की बजाय संकेतों और स्थितियों के माध्यम से सामने रखता है (श्यामसुंदर घोष, 1958)। आम आदमी की चुप्पी, सहनशीलता और मजबूरी व्यंग्य का प्रमुख आधार बनती है। इसी कारण वह हँसी का पात्र भर न होकर सामाजिक यथार्थ का प्रतिनिधि बन जाता है। व्यंग्यकार उसके माध्यम से जीवन और व्यवस्था के बीच चल रहे तनाव को उभारता है (बालेंदु शेखर तिवारी, 2016)। आम आदमी की यही विशेषताएँ उसे व्यंग्य का केंद्रीय पात्र बनाती हैं, जिन्हें नीचे दी गई तालिका के माध्यम से अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है —

तालिका 01: हिन्दी व्यंग्य में 'आम आदमी' की प्रमुख विशेषताएँ

पक्ष	विवरण
सामाजिक स्थिति	सामान्य, साधारण जीवन जीने वाला व्यक्ति
जीवन अनुभव	छोटे अनुभव, सीमित साधन, दैनिक संघर्ष
प्रमुख स्वर	चुप्पी, सहनशीलता, विवशता
व्यंग्य में भूमिका	सामाजिक यथार्थ का प्रतिनिधि
व्यवस्था से संबंध	तनाव, असमानता और दबाव

[स्रोत: कपिल कुमार सिंह और राघव, (2015)]

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि आम आदमी की अवधारणा केवल सामाजिक पहचान तक सीमित नहीं रहती। वह व्यंग्य में एक जीवित अनुभव के रूप में सामने आता है। उसकी चुप्पी व्यंग्य को तीखापन देती है और उसकी विवशता समाज की संवेदनहीनता को उजागर करती है (केशवचन्द्र वर्मा, 1961)। व्यंग्यकार आम आदमी के माध्यम से सत्ता, व्यवस्था और सामाजिक ढाँचे पर प्रश्न खड़े करता है। यही कारण है कि आम आदमी व्यंग्य में स्थायी महत्त्व प्राप्त करता है। उसकी स्थिति पाठक को अपनी ही दुनिया से जोड़ती है और व्यंग्य को जीवन के निकट ले आती है। इसी वैचारिक आधार पर आगे चलकर हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में आम आदमी की

सामाजिक स्थिति और अधिक गहराई के साथ उभरती है, जो अगले अवलोकन की विषयवस्तु का केंद्र बनती है।

IV. हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में 'आम आदमी' की सामाजिक स्थिति

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में आम आदमी की सामाजिक स्थिति बहुत स्पष्ट और जीवन के क़रीब दिखाई देती है। उनके यहाँ आम आदमी वही व्यक्ति है जो व्यवस्था के भीतर रहते हुए उसकी मार झेलता है। 'भोलाराम का जीव' और 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर' — जैसी रचनाओं में यह व्यक्ति दफ्तर, सत्ता और नियमों के जाल में फँसा हुआ दिखता है। परसाई आम आदमी को दया का पात्र नहीं बनाते हैं। क्योंकि वह उसकी वास्तविक स्थिति को सीधे सामने रखते हैं (विश्वनाथ त्रिपाठी, 2019)। उनकी नज़र में आम आदमी की समस्याएँ व्यक्तिगत कम और सामाजिक अधिक होती हैं। इसी कारण उनका व्यंग्य केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं रहता। वह पूरे समाज और व्यवस्था पर टिप्पणी बन जाता है। इस स्तर पर परसाई का लेखन हिन्दी व्यंग्य को नई सामाजिक समझ देता है। इसी सामाजिक दृष्टि के कारण उनके व्यंग्य में गहराई दिखाई देती है (भारत पटेल, 2007)। इसीलिए कई विद्वानों का मानना है कि —

"परसाई ने समाज और राजनीति के सबसे बदसूरत पहलुओं को सामने लाया।
वे केवल हंसाने के लिए नहीं,
बल्कि पाठकों को सच से रूबरू कराने के लिए लिखते थे।"
[बरसाने लाल चतुर्वेदी, (1975), पृ. 71]

इसी परंपरा में परसाई का आम आदमी दूसरे व्यंग्यकारों की तुलना में अधिक असहज और भीतर से टूटा हुआ दिखाई देता है। "शरद जोशी" के यहाँ आम आदमी रोज़मर्रा की विडम्बनाओं में उलझा हुआ मिलता है, जबकि "श्रीलाल शुक्ल" के यहाँ वह पूरे सामाजिक ढाँचे का हिस्सा बनकर सामने आता है (कपिल कुमार सिंह और राघव, 2015)। परसाई का आम आदमी इन दोनों से अलग अपनी पीड़ा को भीतर ही भीतर सहता चलता है। 'विकलांग श्रद्धा का दौर' और 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में उसकी चुप्पी सबसे बड़ी पहचान बन जाती है। यही चुप्पी व्यवस्था की ताकत बनकर उभरती है (डॉ॰ सुजाता वर्मा, 2020)। परसाई इस चुप्पी को सामाजिक स्थिति का संकेत बना देते हैं। यहाँ आम आदमी हालात को समझता है, लेकिन उन्हें बदल नहीं पाता। यही विवशता परसाई के व्यंग्य को तीखा बनाती है। इसी विवशता को वे गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, "प्रेमचंद के फटे जूते" में निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय हैं —

"लोग तो इत्र चुपड़कर फोटो खिंचवाते हैं,
जिससे फोटो में खुशबू आ जाए।
तुम तो जूते ही फाड़ बैठे!"
[श्याम कश्यप, (2023), पृ. 167]

इसी कथन के साथ परसाई के व्यंग्य में आम आदमी की सामाजिक स्थिति और अधिक साफ़ दिखाई देने लगती है। 'प्रेमचंद के फटे जूते' में आम आदमी अपनी सच्चाई के साथ खड़ा नज़र आता है, जहाँ दिखावे की कोई जगह नहीं रहती (डॉ. कमलेश कुमार पटेल, 2024)। यही बात परसाई को "केशवचंद्र वर्मा" और "लतीफ घोड़ी" से अलग करती है, जिनके यहाँ व्यंग्य हल्की मुस्कान के साथ आगे बढ़ता है। परसाई का आम आदमी अपनी सच्चाई की कीमत चुकाता हुआ दिखता है। उसकी गरीबी, ईमानदारी और मजबूरी समाज के असली चेहरे को सामने लाती है। इसी कारण परसाई के व्यंग्य में आम आदमी सामाजिक चेतना का केंद्र बन जाता है। इसी स्थिति से आगे उसकी विडम्बनाएँ जन्म लेती हैं। इन विडम्बनाओं पर आगे के भागों में चर्चा करना आवश्यक हो जाता है। यही दृष्टि परसाई के व्यंग्य को स्थायी प्रभाव प्रदान करती है (बाबूराव देसाई, 2022)।

V. आम आदमी की विडम्बनाएँ : शोषण, चुप्पी और प्रतिरोध

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में आम आदमी की सबसे बड़ी विडम्बना उसका लगातार शोषण है। यह शोषण सत्ता, प्रशासन और सामाजिक व्यवस्था के भीतर साफ़ दिखाई देता है। 'भोलाराम का जीव' और 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर' में आम आदमी नियमों और दफ्तरों के बीच दबता हुआ नज़र आता है (गिरिराज शरण अग्रवाल, 2017)। 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में लोकतंत्र की ठंडक आम आदमी के जीवन से टकराती हुई दिखती है। परसाई इस शोषण को सीधे आरोप के रूप में रखने की बजाय स्थितियों के सहारे सामने लाते हैं। यहाँ आम आदमी हँसी का कारण बनने के साथ-साथ पीड़ा का केंद्र बना रहता है। यह शोषण व्यवस्था की संवेदनहीनता को उजागर करता है (विश्वनाथ त्रिपाठी, 2019)। यही स्थिति 'कृष्ण चंदर' की कहानी 'जामुन का पेड़' की याद दिलाती है, जहाँ आदमी से अधिक फाइलें महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं —

"हमने माना कि तगाफुल न करोगे,
लेकिन खाक हो जाएंगे हम,
तुमको खबर होने तक।"
[केशवचन्द्र वर्मा, (1961), पृ. 176]

इसी शोषण से आम आदमी की दूसरी बड़ी विडम्बना उसकी चुप्पी के रूप में सामने आती है। परसाई की 'प्रेमचंद के फटे जूते' और 'बेईमानी की परत' में यह चुप्पी ईमानदारी की कीमत बन जाती है (कमलेश कुमार पटेल, 2024)। आम आदमी अन्याय को समझता तो है, लेकिन वह बोल नहीं पाता। यह चुप्पी डर, आदत और मजबूरी से बनती है। शरद जोशी के यहाँ यह चुप्पी मध्यवर्गीय समझौते जैसी दिखाई देती है। इसके विपरीत परसाई के यहाँ यह व्यवस्था से टकराने में असमर्थता का रूप ले लेती है। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य में समाज सामूहिक रूप से बोलता है। लेकिन परसाई व्यक्ति की खामोशी पर अधिक ध्यान देते हैं। यही चुप्पी भीतर ही भीतर प्रतिरोध की ज़मीन तैयार करती है (स॰ एम॰ एम॰ चन्द्र, 2023)। इस अंतर को अन्य व्यंग्यकारों से तुलना करने पर और स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है —

तालिका 02: परसाई और अन्य व्यंग्यकारों में आम आदमी की स्थिति

व्यंग्यकार	आम आदमी की स्थिति	प्रमुख स्वर
हरिशंकर परसाई	व्यवस्था में पिसता व्यक्ति	नैतिक, तीखा
शरद जोशी	मध्यवर्गीय समझौतों में उलझा व्यक्ति	हल्का, व्यावहारिक
श्रीलाल शुक्ल	पूरे सामाजिक ढांचे का हिस्सा	व्यापक, यथार्थ
के. पी. सक्सेना	बदलते मूल्यों से जूझता व्यक्ति	चुटीला, समकालीन

[स्रोत: अनुपमा तिवारी, (2021)]

इस तालिका से यह बात साफ़ हो जाती है कि हर व्यंग्यकार के यहाँ आम आदमी का प्रतिरोध अलग रूप में दिखाई देता है। परसाई के व्यंग्य में यह प्रतिरोध ऊँची आवाज़

में दिखने की बजाय संकेत और सोच के स्तर पर सामने आता है (गिरिराज शरण अग्रवाल, 2017)। 'सदाचार का ताबीज', 'भूत के पाँव पीछे' और 'जैसे उनके दिन फिरे' में आम आदमी नैतिक सवाल खड़े करता हुआ दिखता है। वह व्यवस्था से सीधे टकराता नहीं, लेकिन उसकी सच्चाई को उजागर कर देता है। नरेन्द्र कोहली और प्रेम जनमेजय के यहाँ प्रतिरोध अधिक आक्रामक रूप में सामने आता है। इसके विपरीत परसाई के यहाँ यह प्रतिरोध भीतर से पैदा होता है। यही प्रतिरोध आम आदमी को पूरी तरह टूटने से बचाए रखता है। इसी बिंदु से आगे समकालीन व्यंग्य में आम आदमी की बदलती छवि को समझने की भूमिका बनती है (डॉ॰ सुजाता वर्मा, 2020)। यही क्रम अगले भाग की वैचारिक दिशा तय करता है।

VI. समकालीन व्यंग्य में आम आदमी की बदलती छवि

समकालीन हिन्दी व्यंग्य में आम आदमी की छवि पहले की तुलना में अधिक असुरक्षित और चिंतित दिखाई देती है। अब वह केवल सत्ता से परेशान व्यक्ति भर नहीं रह जाता। वह सामाजिक संस्थाओं के बीच अपनी जगह तलाशता हुआ नज़र आता है। रवीन्द्रनाथ त्यागी की रचना "मिस्टर चित्र", "देवदार के पेड़" और "अतिरिक्त" एवं अमृत राय की "बतास", "मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ" और "विजिट इंडिया" — जैसी रचनाओं में यह आम आदमी मध्यवर्गीय दबावों और रोज़मर्रा की अस्थिरता से घिरा हुआ मिलता है (कमलेश कुमार पटेल, 2024)। उसकी समस्याएँ अब केवल आर्थिक नहीं रहतीं। वे उसकी पहचान और भरोसे से भी जुड़ जाती हैं। समकालीन व्यंग्य इस स्थिति को सीधे आरोप के रूप में चित्रित करने की बजाय अनुभव के रूप में प्रस्तुत करता है। आम आदमी अब व्यवस्था पर आँख बंद कर भरोसा नहीं करता। यही मानसिक बदलाव उसकी नई छवि को आकार देता है (गिरिराज शरण अग्रवाल, 2017)। यह स्थिति शंकर शेष के नाटक में खासतौर पर उभरकर सामने आती हैं। उदाहरण के लिए, इन विसंगतियों की परिणति "आधी रात के बाद" नाटक में होती है, जहाँ व्यक्ति और व्यवस्था के संघर्ष का सबसे तीखा रूप उभरता है। उदाहरण के लिए, "चोर" का यह कहना कि —

"मैं चोर हूँ क्योंकि सच बोलने वाला
आज सबसे बड़ा अपराधी है।"
[स॰ एम॰ एम॰ चन्द्र, (2023), पृ. 111]

यह कथन समकालीन व्यंग्य में आम आदमी की स्थिति को और स्पष्ट तथा गहरा बनाता है। नरेन्द्र कोहली की "एक और लाल टिफिन", "पाँच एक्सप्रेस उपन्यास", "जगाने का अपराध" और "आधुनिक लड़की की पीड़ा" — जैसी रचनाओं में आम आदमी सच को समझते हुए भी उसे कहने से डरता हुआ दिखाई देता है (श्यामसुंदर घोष, 1958)। वह पुलिस, अदालत और प्रशासन से दूरी बनाए रखना सीख लेता है। यह डर उसे भीतर से कमजोर करता है, लेकिन बाहर से वह शांत बना रहता है। अमृत राय और रवीन्द्रनाथ त्यागी के यहाँ यही चुप्पी भावनात्मक रूप ले लेती है। आम आदमी अपने बच्चों, घर और रोज़ी-रोटी के लिए बोलना छोड़ देता है। व्यंग्य इस मौन को कमजोरी नहीं मानता। वह इसे मजबूरी के रूप में सामने रखता है। यही मजबूरी समकालीन व्यंग्य में आम आदमी की बदलती छवि को परिभाषित करती है (अनुपमा तिवारी, 2021)। यह स्थिति "उदय प्रकाश" की कविता 'बैरागी आया है गाँव में' के उस पद से जुड़ती है, जो निम्नवर्गीय परिवार की गरीबी, बेबसी का अति संवेदनशील साक्ष्य है —

"जहाँ तुम्हारा चूल्हा ठण्डा पड़ा है।
पतीली औंधी धरी है और
पाँच दिन की भूखी कानी कुतिया,
जहाँ सो रही है,
पाँच दिन की बुझी राख पर।"
[कमलेश कुमार पटेल, (2024), पृ. 198]

इस पद से जुड़कर समकालीन व्यंग्य का आम आदमी और अधिक साफ़ रूप में सामने आता है। अब वह केवल मध्यवर्ग तक सीमित न रहकर निम्नवर्ग की गरीबी, असुरक्षा और भूख का चेहरा भी बन जाता है (बरसाने लाल चतुर्वेदी, 1975)। लतीफ घोड़ी और संतोष खरे के व्यंग्य में यह आम आदमी व्यवस्था से शिकायत करने की बजाय चुपचाप जीवन का बोझ उठाता हुआ दिखाई देता है। डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी और सुदर्शन मजीठिया के यहाँ यही व्यक्ति भीतर ही भीतर सवाल करता है। वह जानता है कि बदलाव आसान नहीं है, फिर भी अपनी सोच को जीवित रखता है। यही सोच उसे पूरी तरह टूटने से बचाती है। समकालीन व्यंग्य में यही सजग और विवश व्यक्ति आम आदमी की नई पहचान बनता है (ललिता यादव, 2015)। इसी पहचान के आधार पर आगे आम आदमी को उपभोक्ता और पीड़ित के रूप में समझने की भूमिका बनती है।

VII. समकालीन व्यंग्य में आम आदमी: उपभोक्ता और पीड़ित

मध्यवर्गीय जीवन की समस्याएँ परसाई के समय के व्यंग्य साहित्य का एक अहम पक्ष हैं। इस वर्ग की इच्छाएँ ज़्यादा बड़ी नहीं होतीं, लेकिन उनके मन में डर और असुरक्षा लगातार बढ़ती रहती है। 'राधाकृष्ण' की "कुंभकर्ण जागता है" और "अनुत्तर यौवन" — जैसी रचनाओं में मध्यवर्ग अपनी सामाजिक स्थिति को बचाए रखने की चिंता में डूबा दिखाई देता है (बरसाने लाल चतुर्वेदी, 1975)। 'सुदर्शन मजीठिया' की 'इंडिकेट बनाम सिंडीकेट', 'मुख्यमंत्री का डंडा', 'कुछ इधर की कुछ उधर की' और 'टेलीफोन की घंटी से' — जैसी रचनाओं में व्यंग्य नौकरी, पद और प्रतिष्ठा की होड़ में फँसे व्यक्ति की मनःस्थिति को साफ़ दिखाते हैं। 'के. पी. सक्सेना' के यहाँ मध्यवर्ग अपनी ही सीमित सोच में उलझा हुआ नज़र आता है। इन रचनाओं के पात्र न तो खुलकर विरोध करते हैं और न ही जीवन से संतुष्ट दिखाई देते हैं। वे हालात से समझौता करते हुए जीवन बिताते हैं। यही स्थिति मध्यवर्ग की सच्ची तस्वीर बनती है, जहाँ डर और सुविधा दोनों साथ चलते हैं (अनुपमा तिवारी, 2021)। इसी मानसिक दबाव को महँगाई के संदर्भ में डॉ. हरभजन सिंह 'हंसपाल' अपनी रचना "खाओ और खाने दो" के माध्यम से सामने रखते हैं —

"इन दिनों देश में महँगाई इतनी बढ़ी है कि जीवित मनुष्य जिंदा रहने से डरता है। बूढ़ा और बीमार मनुष्य लकड़ियों की महँगाई देखकर मरने से डरता है। स्कूलों में दिए जाने वाले डोनेशन को देखकर बच्चा पैदा होने से डरता है। अविवाहित शादी करने से डरता है। विवाहित महँगी पत्नी से डरता है। यहाँ तक कि महँगाई के कारण ही प्रधानमंत्री ताऊ से डरता है और ताऊ प्रधानमंत्री से डरता है।"
[सुजाता वर्मा, (2020), पृ. 98]

मध्यवर्गीय असुरक्षा से आगे बढ़कर व्यंग्य साहित्य आम आदमी की आर्थिक परेशानियों को साफ़ रूप में भी दिखाता है। बढ़ती महँगाई ने आम जीवन को इतना जकड़ लिया है कि रोज़मर्रा की ज़रूरतें पूरी करना भी मुश्किल हो गया है (ललिता यादव, 2015)। समकालीन व्यंग्य में यह स्थिति घर के भीतर चलने वाले चुपचाप संघर्षों में दिखाई देती है। आम आदमी दिन-भर खर्च का हिसाब लगाता रहता है, फिर

भी उसे सुकून नहीं मिलता। घर की ज़िम्मेदारियाँ उसे चैन की नींद तक नहीं लेने देतीं। इस पूरे संघर्ष में स्त्री की भूमिका खास तौर पर सामने आती है, जो घर की व्यवस्था संभालने की लगातार कोशिश करती है। यहाँ व्यंग्य किसी नारे की तरह न होकर जीवन की सच्चाई बनकर सामने आता है (सुभाष चंदर, 2017)। 'नरेंद्र गौड़' की कविता 'उसकी एक रात' आम जीवन की इसी थकान और चिंता को संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत करती है —

"20 दूध वाले को/40 राशन के 15 लगेंगे मिट्टी तेल में/
60 मकान मालिक को जायेंगे/ 100 किराने वाले को/
किताबें भी आनी हैं/ बच्ची की इसी माह/30 तो चाहिए/
साग-सब्ज़ी दिगर में / टल्ला मारती/पूछेगी- अखबार बंद कर दें ?/
उधार की प्रतिक्षा किये बिना / जोड़ने लगेंगी/फिर से/
बुदबुदाते रहेंगे ओंठ/ हिलती रहेंगी/
उसकी उंगलियाँ / नींद में।"
[गिरिराज शरण अग्रवाल एवं रमेश तिवारी, (2017), पृ. 156]

इन सामाजिक और आर्थिक दबावों के बीच आम आदमी की हालत और उलझ जाती है। वह व्यवस्था से खुलकर टकरा नहीं पाता, लेकिन भीतर ही भीतर टूटता रहता है। व्यंग्य इस टूटन को ऊँची आवाज़ में व्यक्त करने की बजाय अनुभव की साधारण भाषा में सामने लाता है। सत्ता और व्यवस्था आम आदमी की समस्याओं से दूर नज़र आती हैं (बरसाने लाल चतुर्वेदी, 1975)। प्रशासन उसकी ज़रूरतों को समझने में असफल दिखाई देता है। यह दूरी आम व्यक्ति को और अधिक असहाय बना देती है। समकालीन व्यंग्य इसी असंतुलन को उजागर करता है और सत्ता को उसका सच दिखाता है। इस तरह व्यंग्य केवल सामाजिक आलोचना नहीं रह जाती है। क्योंकि वह व्यवस्था और आम आदमी के रिश्तों को समझने का माध्यम बन जाती है (बाबूराव देसाई, 2022)।

VIII. हिन्दी व्यंग्य में आम आदमी की प्रासंगिकता एवं प्रभाव

हिन्दी व्यंग्य में आम आदमी केवल एक पात्र नहीं रहता है। क्योंकि वह पूरी सामाजिक चेतना का प्रतिनिधि बनकर सामने आता है। व्यंग्यकार उसके अनुभवों के सहारे समाज की असली स्थितियों को दिखाता है (सुभाष चंदर, 2017)। आम आदमी की साधारण ज़िंदगी व्यंग्य को कल्पना से निकालकर वास्तविक जीवन से जोड़ देती है। पाठक इस पात्र में अपनी ज़िंदगी, अपनी परेशानियाँ और अपने सवाल पहचान लेता है। इसी वजह से व्यंग्य अधिक प्रभावशाली बनता है और पाठक से सीधा संवाद करता है। समय के साथ हालात बदलते रहते हैं, लेकिन आम आदमी की मौजूदगी व्यंग्य को प्रासंगिक बनाए रखती है (डॉ. ललिता यादव, 2015)। इसी भूमिका के कारण आम आदमी हिन्दी व्यंग्य का स्थायी केंद्र बन जाता है। इसी प्रासंगिकता को आगे निम्नलिखित पहलुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

1) सामाजिक यथार्थ से सीधा जुड़ाव —
आम आदमी व्यंग्य को समाज की वास्तविक ज़मीन से जोड़ता है। उसकी समस्याएँ बनावटी होने की बजाय रोज़मर्रा के जीवन से निकली होती हैं। व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक असमानता, दबाव और अन्याय स्पष्ट होते हैं। पाठक को यह महसूस होता है कि व्यंग्य उसी की दुनिया की बात कर रहा है। यही जुड़ाव व्यंग्य को प्रभावशाली बनाता है (बाबूराव देसाई, 2022)। आम आदमी के बिना व्यंग्य केवल विचार बनकर रह जाता। उसके साथ वह सामाजिक दस्तावेज़ का रूप ले लेता है। यही कारण है कि व्यंग्य समाज को समझने का माध्यम बनता है।

2) पाठकीय चेतना का निर्माण —
आम आदमी के माध्यम से व्यंग्य पाठक को सोचने के लिए प्रेरित करता है। पाठक अपनी चुप्पी, समझौते और डर को पहचानने लगता है। व्यंग्य उसे सीधे उपदेश देने की बजाय अनुभव के ज़रिये सवाल खड़े करता है। यह प्रक्रिया पाठकीय चेतना को विकसित करती है (डॉ॰ सुजाता वर्मा, 2020)। आम आदमी यहाँ पाठक और समाज के बीच सेतु बन जाता है। व्यंग्य पढ़ते हुए पाठक खुद को रचना के भीतर पाता है। यही आत्मिक जुड़ाव व्यंग्य को असरदार बनाता है। इस तरह व्यंग्य विचार का माध्यम बन जाता है।

3) लोकतांत्रिक सोच को मजबूती —
आम आदमी की उपस्थिति व्यंग्य को लोकतांत्रिक स्वर देती है। यहाँ साहित्य सत्ता या विशेष वर्ग के पक्ष में नहीं रहता। आम आदमी की दृष्टि से समाज को देखने का प्रयास होता है। व्यंग्य इस दृष्टि से बराबरी और सवाल करने की भावना पैदा करता है। यह भावना लोकतंत्र की बुनियाद मानी जाती है। आम आदमी की आवाज़ व्यंग्य को जनपक्षीय बनाती है। इसी कारण व्यंग्य सामाजिक हस्तक्षेप का रूप ले लेता है। यह भूमिका व्यंग्य को वैचारिक रूप से मजबूत करती है।

4) समय के साथ बदलने की क्षमता —
आम आदमी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी बदलने की क्षमता है। समय के साथ उसकी समस्याएँ, सोच और जीवन-शैली बदलती रहती है। व्यंग्य इस बदलाव को पकड़कर खुद को नया रूप देता है। इसी कारण व्यंग्य पुराना नहीं पड़ता। आम आदमी के बदलते रूप के साथ व्यंग्य भी समकालीन बना रहता है। यह लचीलापन हिन्दी व्यंग्य की बड़ी ताकत है। आम आदमी के बिना यह बदलाव संभव नहीं होता। यही गुण व्यंग्य को जीवंत बनाए रखता है।

इस प्रकार हिन्दी व्यंग्य में आम आदमी की महत्ता और उसका प्रभाव साफ़ रूप में सामने आता है। आम आदमी व्यंग्य को समाज, पाठक और समय से जोड़ने का काम करता है (स. एम. एम. चन्द्र, 2023)। उसकी मौजूदगी के कारण व्यंग्य केवल हँसी तक सीमित नहीं रहता। वह सोच और सामाजिक चेतना का माध्यम बन जाता है। आम आदमी के बिना व्यंग्य अपनी सामाजिक भूमिका निभा नहीं पाता। उसी के अनुभव व्यंग्य को अर्थ और गहराई देते हैं। इसलिए हिन्दी व्यंग्य की ताकत और सार्थकता आम आदमी से जुड़ी हुई मानी जाती है। इसी आधार पर व्यंग्य आने वाले समय में भी प्रासंगिक बना रहता है (सुभाष चंदर, 2017)। यही समझ पूरे शोध-पत्र के निष्कर्ष की दिशा तय करती है।

IX. निष्कर्ष और सुझाव

इस शोध-पत्र में हिन्दी व्यंग्य में 'आम आदमी' की छवि को परसाई से लेकर समकालीन व्यंग्य तक एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। परसाई के व्यंग्य में आम आदमी व्यवस्था से टकराता हुआ दिखाई देता है और भीतर से जागरूक भी रहता है। वह सवाल करता है और पूरी तरह हार नहीं मानता। क्योंकि अपने सीमित स्तर पर विरोध की भावना रखता है। 'शरद जोशी' और 'श्रीलाल शुक्ल' के व्यंग्य में यही आम आदमी और अधिक उलझा हुआ नजर आता है। वह रोजमर्रा की मजबूरियों, दबावों और समझौतों के बीच फँसा रहता है। समकालीन व्यंग्य में पहुँचते-पहुँचते आम आदमी और भी असुरक्षित तथा भय से घिरा हुआ दिखाई देता है। यहाँ वह अपने अस्तित्व को लेकर चिंतित है और लगातार संघर्ष करता दिखता है। वह उपभोक्ता भी है और शोषण का शिकार भी, जो बाजार और सत्ता दोनों के दबाव

में जी रहा है। इस तरह हिन्दी व्यंग्य आम आदमी के माध्यम से समाज की सच्चाइयों को सामने लाने का एक प्रभावशाली साधन बन जाता है।

इस अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी व्यंग्य पर होने वाले आगे के शोधों में आम आदमी की छवि को केवल दुख और पीड़ा तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिए। उसे उसकी सोच, समझ और संभावनाओं के साथ भी देखने की जरूरत है। समकालीन व्यंग्यकारों के नए लेखन को शोध में गंभीरता से शामिल किया जाना चाहिए। बाजार, मीडिया और तकनीक के कारण आम आदमी की सोच में आए बदलावों पर अलग से अध्ययन किया जा सकता है। व्यंग्य और लोकतंत्र के आपसी संबंध को समझने के लिए तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी हो सकता है। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में व्यंग्य साहित्य को हाशिए पर न रखकर मुख्य स्थान दिया जाना चाहिए। शोधार्थियों को व्यंग्य को हास्य के साथ-साथ सामाजिक अनुभव के रूप में पढ़ना चाहिए। आम आदमी की वास्तविक आवाज को समझने के लिए व्यंग्य को समाज और राजनीति के संदर्भ में भी देखा जाना आवश्यक है। इससे हिन्दी व्यंग्य के अध्ययन को नई दिशा और व्यापक अर्थ मिल सकते हैं।

संदर्भ सूची

[1] पटेल, डॉ. कमलेश कुमार. (2024). *“स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य साहित्य और व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल”*. चिंतन प्रकाशन, कानपुर.

[2] कश्यप, श्याम. (2023). *“हरिशंकर परसाई: संकलित रचनाएँ”*. नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया.

[3] चन्द्र, स. एम. एम. (2023). *“व्यंग्य के नव स्वर”*. डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि.

[4] देसाई, बाबूराव. (2022). *“हिंदी व्यंग्य विधा: शास्त्र और इतिहास”*. चिंतन प्रकाशन.

[5] तिवारी, अनुपमा. (2021). *“हिंदी साहित्य में व्यंग्य का स्वरूप और विविध आयाम”*. हिंदी बुक सेंटर.

[6] वर्मा, डॉ॰ सुजाता. (2020). *“हिंदी का आधुनिक हास्य व्यंग्य साहित्य”*. अनुसंधान पब्लिशर्स.

[7] त्रिपाठी, विश्वनाथ. (2019). *“भारतीय साहित्य के निर्माता: हरिशंकर परसाई”*. साहित्य अकादेमी.

[8] चंदर, सुभाष. (2017). *“हिंदी व्यंग्य का इतिहास”*. भावना प्रकाशन.

[9] अग्रवाल, गिरिराज शरण., एवं तिवारी, रमेश. (2017). *“समकालीन हिंदी व्यंग्य”*. हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर.

[10] तिवारी, बालेंदु शेखर. (2016). *“हिंदी हास्य व्यंग्य कोश”*. समन्वय प्रकाशन.

[11] यादव, डॉ. ललिता. (2015). *“हिंदी साहित्य में व्यंग्य का विकास”*. हिंदी बुक सेंटर.

[12] सिंह राघव, कपिल कुमार. (2015). *“हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य”*. राज पब्लिकेशन्स.

[13] सिंह, डॉ. इतू. (2014). *“हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य”*. नयी किताब समूह.

[14] पटेल, भारत. (2007). *“व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई”*. चिंतन प्रकाशन, कानपुर.

[15] दीक्षित, डॉ. शिवजी नारायण. (1975). *“हास्य के सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य”*. हिंदी साहित्य संसार, नई सड़क, दिल्ली.

[16] चतुर्वेदी, डॉ. बरसाने लाल. (1975). *“हिंदी साहित्य में हास्य रस”*. हिंदी साहित्य संसार, नई सड़क, दिल्ली.

[17] वर्मा, केशवचन्द्र. (संपा.). (1961). *“आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य”*. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी.

[18] घोष, डॉ. श्यामसुंदर. (1958). *“व्यंग्य क्या व्यंग्य क्यों”*. साहित्य प्रकाशन, दिल्ली.

[19] आनंदवर्धन. (1888). *“ध्वन्यालोक:”*. ज्ञानमंडल लिमिटेड. वाराणसी.